

**TEXT PROBLEM
WITHIN THE
BOOK ONLY**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_176038

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 81

P. 6
Acc. No. H 174

C 49T

चतुर्वेदी श्री श्रीरत्नलाल

त्रिधात्री

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. ^A 81

Accession No. P. G 11174

Author C 497

~~213 211~~ 21121 21121

Title P 7 E 1121

This book should be returned on or before the date last marked below.

वक्रव्य

एक ता संपादक का काय ब्रम हा कठिन है, फिर कवियों की कृतियों का और ऐसे वैसे भी नहीं, महारथियों की कविताओं का संपादन और भी कठिन है। वे लोग तो 'चरण धरत कपीपत श्रियो' वाले रहते हैं। उनकी गति में बाधा डालना कम से कम मेरे लिए अनधिकार चेष्टा है।

इस संग्रह का संपादकत्व स्वीकार करते समय मैंने सोचा था कि मैं अपनी दृष्टि से इन कवियों की कविताओं में सारतम्य स्थापित करके उनकी आंतरिक प्रेरणाओं पर प्रकाश डालने और उन कविताओं के पारस्परिक सामंजस्य को धंकीत करने का यत्न करूँगा। परंतु इस संग्रह के प्रकाशन में इतनी शीघ्रता की जा रही है कि मैं अपने उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर सकता। अतः विवश होकर मुझे इन कविताओं के संबंध में अपने अत्युत्पन्न विचार संक्षेप में प्रकट करके ही सन्तोष कर लेना पड़ता है।

इस संग्रह में हिन्दी के तीन कवियों की कृतियाँ प्रथित हैं। पण्डित माखनलाल जी चतुर्वेदी कवि-रूप में 'एक भारती आत्मा' के नाम से प्रसिद्ध हैं, श्रीमती सुभद्रा कुमारी जी चौहान ने किसी विशेष उपनाम से कविता नहीं लिखी; परंतु उनकी रचनाओं ने उनके नाम को ही विशेषता दे दी है, और हवाइयाते उमर खय्याम का सर्वश्रेष्ठ हिन्दी अनुवाद करने के नाते केशवप्रसाद जो पाठक को हिन्दी उमर खय्याम के नाम से पुकारना अनुपयुक्त न होगा।

प० माखनलाल जी चतुर्वेदी की कविता उनके उपनाम के अनुरूप ही है। आप उनकी किसी भी रचना को उठा लीजिए, उसमें

कहीं कहीं न कहीं, किसी न किसी रूप में भारत माता को छटपटाती हुई, कहीं आहत होकर गिरती हुई, कहीं विजय के लिए उठती हुई, किन्तु सदा स्वतंत्रता की ओर अदम्य उत्साह से बढ़ती हुई अवश्य पावेंगे। उनका समस्त कवित्व केन्द्रीभूत है भारत की आत्मा में।

श्रीमती सुभद्राकुमारी जी चौहान पराकोटिवादी हैं। उनका प्रेम, उनका आनन्द, उनका उल्लास, उनका नैराश्य, उनका वीरत्व, उनकी देश-भक्ति सब अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँचे हुए मिलते हैं। जब वे अनुभव करती हैं तब वे हृदय के किमी एक कोने में नहीं अनुभव करतीं, किन्तु उनका सम्पूर्ण हृदय उस अनुभूति से ओत-पोत हो उठता है, और उस समय उनके हृदय में यदि अन्य किमी भावना का उदय भी होता है तो वह भी उसी रंग में रँगकर प्रधान अनुभूति की सहायक बन जाती है। उनकी काव्य-प्रतिभा की चेतना-तरङ्गिणी एकओर स्वदेश के कूल और दूसरी ओर मानवता के तट को घूमती हुई चलती है।

पं० केशवप्रसाद जी पाठक की कविता में विन्तनशीलता है। वे अनुभव करते हैं; फिर उस अनुभूति की रूपरेखा की जाँच करते हैं, और अन्त में उसे काव्य परिधान पहिनाकर सौन्दर्यमयी बना देते हैं। उनके शब्द मँभे हुए हैं, भाव व्यवस्थित हैं, और विचार-शृंखला क्रमबद्ध है, मानो कुशल जौहरी ने चुन चुन कर मोतियों का हार बना दिया है, जिसका प्रत्येक दाना अपने ठीक स्थान पर जमा है। सममिति का सौन्दर्य इनकी कविता की विशेषता है।

उपर्युक्त कथन की पुष्टि के लिए कविताओं का उदाहरण देना अनावश्यक है, क्योंकि यह संग्रह ही उदाहरण के रूप में प्रस्तुत है।

जबलपुर
६-२-१९३५

लक्ष्मणसिंह चौहान

सूची

श्री माखनलाल चतुर्वेदी

कृज कुटीरे यमुना तीरे	१
लूंगी दर्पण छीन	५
उन्मूलित वृक्ष	७
मरण त्योहार	९
पुष्प की अभिलाषा	१५
प्रभात	१६
घाँसू	१७
खोजमयी मनुहार	२७
हरियाली घड़ियाँ	२८
स्मृति के मधुर वसन्त	३१
वेदना गीत से	३४
कैदी और कोकिला	३८
सतपुड़ा शैल के एक भरने को देखकर	४४

10 सुभद्राकुमारी चौहान

1म-शृंखला	५१
मेरा जीवन	५५
वीरों का कैसा हो वसन्त	५८
अपराधी है कौन	६०

मेरी प्याळी	६७
मनुहार	६९
रह्याम	७२
स्वागत माज	७६
करुण कहानी	७९
प्रथम दर्शन	८५
सेनानी का स्वागत	८६
साध	९०
भांसी की रानी की समाधि पर	९२

श्री केशवप्रसाद पाठक

पूछ रहे हो मेरा घर	९७
वसन्त	९९
आह क्या होगा लेकर प्यार	१०४
वादक से	१०६
स्मृतियाँ	११२

श्री माखनलाल चतुर्वेदी

त्रिधारा



“कुञ्ज कुटीरे यमुना तीरे”

पगली तेरा ठाठ, किया है रत्नाम्बर परिधान ।
अपने क़ाबू नहीं और यह सचत्यारण विधान ॥
वन्मादक मीठे सपने ये और अधिक मत ठहरें !
साक्षी न हों न्याय-मन्दिर में कालिन्दी की लहरें ॥

डोर खींच मत शोर मचा,

मत बहक लगा मत ज़ोर ।

मांगी, थाह देख कर आ तू,

मानस-तट की ओर ॥



त्रिधारा

कौन गा उठा ? अरे करे मत ये पुतलियाँ अधीर ।
इसी क़द पर बन्दी हैं वे श्यामल-गौर शरीर ॥
पलकों की चिक पर हत्तल के छूट रहे फ़वारे ।
निश्वासें पंखे ऋलती हैं, उनसे मत गुञ्जारे ॥

यही व्याधि मेरी समाधि है,
यही राग है त्याग ।
कूर तान के तीखे शर मत
छेदें मेरे भाग ॥

*

*

*

काले अन्तस्तक से फूटी कालिन्दी की धार ।
पुतली की नौका पर लाई मैं दिलदार उतार ॥
बादबान तानी पलकों ने—हा यह क्या चीत्कार !
कैसे इदँ ? हृदय-सिन्धु में, छूट पड़ी पतवार ॥

त्रिधारा



भूली जाती हूँ अपने को,
प्यारे मत कर शोर ।
भाग नहीं, गह लेने दे,
तेरे अम्बर का छोर ॥



अरे, बिकी बेदाम कहाँ मैं हुई बड़ी तकलीर ।
धोती हूँ, जो बना चुकी हूँ पुतली में तस्वीर ॥
डरती हूँ दिखलाई पड़ती तेरी वलमें बंशी ।
' कुझ-कुटीरे यमुना-तीरे ' तू दिखता यदुबंशी ॥

अपराधी हूँ, मंजुल मूरत, ताकी
हा ! क्यों ताकी ?
वनमाकी ! मुझ से न मिटेगी,
ऐसी बाँकी भाँकी ॥

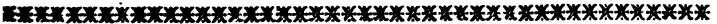


त्रिधारा



अरी खोद कर मत देखे, ये अभी पनप पाये हैं ।
बड़े दिनों में, खारे जल से कुछ अङ्कुर आए हैं ॥
पत्ती को मस्ती छाने दे, कलियाँ कढ़ जाने दे ।
अन्तरतम को अन्त चीर कर अपनी पर आने दे ॥

ही-तल वेध, समस्त खेद तज,
मैं दौड़ी आऊँगी ।
'नील-सिन्धु-जल-त्रौत-चरण'पर
चढ़ कर खो जाऊँगी ॥



त्रिधारा



लूंगी दर्पण छीन

लूंगी दर्पण छीन—देख मत
ले मतवाला चल जाये,
जिन पलकों पर मिटे कई, मत
उन पर चढ़े, फिसल जाये ।
लूंगी दर्पण छीन—द्वैत दोनों
बिन एक न हो जाये,
और निगोड़ी जीभ, झोंठ को
कहीं न श्री-हत कर पाये ।



त्रिधारा



बूँगी दर्पण छीन—न छलके
नयनाऽमृत गालों पर,
मत खारा पानी पड़ जाये
यौवन के छालों पर ।
बूँगी दर्पण छीन—शरण जाने
पर, दीठ गुरुर करे,
अन्तस्तल की चंगुल से
फिसलादे—चकनाचूर करे !
लूँगी दर्पण छीन, कुटो का
एक मात्र शृङ्गार,
सुरत कीमत ?-मतहँस खोले
मधुर अन्त का द्वार ।
अरे बिलम जाने वाले जीवन—
कैसी है मीन ?
कृष्णार्पण ! चलने से पहले
लूँगी दर्पण छीन ।



त्रिधारा

उन्मूलित वृक्ष

भला किया, जो इस उपवन के,
सारे पुष्प तोड़ डाले,
भला किया, मीठे फलवाले
वे तरुवर मरोड़ डाले,
भला किया, सींचो पनपाओ
छगा चुके हो जो कलमें,
भला किया, दुनियाँ पलटा दी
प्रबल उमङ्गों के बल में ।

लो, हम तो चल दिये,
नये पौधो प्यारो, आराम करो,
दो दिन की दुनियाँ में आये,
हिलो-मिलो कुछ काम करो ॥

त्रिधारा

पथरीले ऊँचे टीले हैं,
रोज़ नहीं सींचे जाते,
वे नागर न यहाँ आते हैं,
जो थे बागीचे आते,
भुकी टहनियाँ तोड़ तोड़ कर,
बनचर भी खा जाते हैं,
शाखामृग कन्धों पर चढ़ कर
भीषण शोर मचाते हैं ।

*

*

*

दीनबन्धु की कृपा ! बन्धु,
जीवित हैं, हाँ हरियाले हैं,
भूखे भटके कभी गुज़रना
हम वे ही फल वाले हैं ॥



त्रिधारा

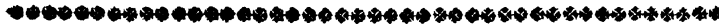


मरण, त्यौहार

नाश ने सागर-तरंगों चीर कर,
गगन से भी कठिन स्वर गम्भीर कर,
तरलता का मधुर आश्वासन दिये,
किन्तु ओलों से इरादों को लिये—
सन्धि का सन्देश भेजा है यहाँ
पूछ कर—“किसके कलेजा है यहाँ ?”



त्रिधारा



चमकते नक्षत्र थे, ग्रह भी बड़े,
हाँ सुधाकर थे, उतरते-से खड़े ।
नाश का आकाश में तम-तोम था,
फैलकर भी विवश सारा व्योम था ।
वस समय सहसा सफेदी बह उठी,
मोम की दीपों सुलगती कह उठीं—
“नाशजी ! नक्षत्र यदि लाचार हैं,
श्रीसुधाकर भी उतरते द्वार हैं,

“तो जलेंगी, तेल कर निज कामना,
आइये, मिटकर करेंगी सामना,
“जानती है, जोर घर की वायु का,
जानती है, समय, अपनी आयु का,
“जानती बाज़ार-दर अपना अहो,
“जानती है, वृष्टि के दिन, मत कहो ।



त्रिधारा



“जानती है—सब सबल के साथ है,
किन्तु रवि के भी हजारों हाथ हैं।
“बे कलेजे ही, कठिन ‘तम’ लाद कर,
अब स्मशानों को स्वयं आवाद कर,
‘एक से लग एक हम जलती रहें,’
और बलि-बहिनें, बढ़ें, फलती रहें;
“सूर्य की किरनों कभी तो आयेंगी !
जलन की घड़ियाँ, उन्हें ले आयेंगी ।”

*

*

*

(थी जहाँ पर भट्टियाँ, सब बुझ पड़ीं;
विश्व में चिनगारियाँ आगे बढ़ीं ।
देव, जीने दो, विमल चिनगारियाँ,
ये चमकती आत्म-बलि की क्यारियाँ ।)
जग पड़ीं वे तुच्छ-सी चिनगारियाँ,
कोटि कण्ठों को उन्हीं पर वारियाँ !



त्रिधारा



‘हे हमें निर्वासनों में हरि मिला,
और तप करते विजय का वर मिला,
‘तप करो, गड़बड़ करो मत, तप करो,
शान्ति में मत, क्रान्ति का आतप करो’
बंग-युग से, कोटि शिर फुकते जहाँ,
भूल पथ, उस पांडिचेरी ने कहा ।

*

*

*

‘ले कृष्ण-सन्देश, कर बलि-वन्दना,
ध्वज तिरंगे की किये बहु अर्चना,
‘धूमता-चरखा लिये गिरि पर चढ़ो,
ले अहिंसा-शस्त्र आगे को बढ़ो,
‘सावरमती पर क्यों न हम को नाज़ हो—
‘अब जवाहर शीश मेरा ताज हो ।’



त्रिधारा



“राज-पथ की गालियाँ हमने सहीं,
प्रार्थनायें पुस्तकें रचकर कहीं,
“श्रेष्ठ है, वह विपिन है अपना सहा—
वध गजेन्द्रों का नहीं होता जहाँ !
“है रिपोर्टों में कलेजा छप रहा,”
देश के ‘आनन्द-भवनों’ ने कहा ।

*

*

*

“ कुर्सियों की है मधुर स्वाधीनता, ’
छोड़ देंगे हम गुलामी, दीनता,
“थैलियाँ हों, दे सकें हम गालियाँ,
हो सकें साम्राज्य की ‘घर-वालियाँ’ ”
देश का स्वातन्त्र्य गवित था जहाँ—
पुण्य-पुर के केहरो-दल ने कहा !—



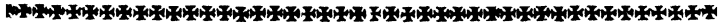
त्रिधारा



जम्बुकेश, चलो !— जहाँ संहार है,
वन्य पशुओं का लगा बाज़ार है !
आज सारी रात कूकेंगे वहाँ,
मोम-दीपों का 'मरण त्यौहार' है !!



त्रिधारा



पुष्प की अभिलाषा

चाह नहीं, मैं सुर बाला के
गहनों में गुँथा जाऊँ,
चाह नहीं, प्रेमी-माला में
बिँध प्यारी को छलचाऊँ,

चाह नहीं, सम्राटों के शत्रु पर
हे हरि ! डाला जाऊँ,
चाह नहीं, देवों के शिर पर
चढ़ूँ, भाग्य पर हठलाऊँ ।

मुझे तोड़ लेना वनमाली !
उस पथ में देना तुम फेंक,
मातृ-भूमि पर शीश चढ़ाने
जिस पथ जावें वीर अनेक ॥



त्रिधारा



प्रभात

चल पड़ी खुपचाप, 'सन-सन-सन' हुआ,
बेलियों को यों चित्ताने सी लगी ।
पुतलियाँ कलियाँ अरी खोलो ज़रा,
लिपटना छोड़ो— मनाने-सी लगी ।

बेलियाँ सिमटों, पखुड़ियाँ खुल पड़ीं,
हिल स्वपतियों को जगाने-सी लगीं ।
पतियों की चुटकियाँ बजने लगीं,
डालियाँ कुछ डुलमुलाने-सी लगीं ।

जग उठा तरु-वृन्द-जग, सुन घोषणा,
पंक्तियों में चहचहाहट मच गई ।
वायु का भौंका जहाँ आया, अहा !
विश्व-भर में सनसनाहट मच गई ।



त्रिधारा

आँसू

आह ! कैसे गिरे ? सीपियों से
ये गरम-गरम मोती,
जगमग हृदय किये देती है,
टपक-टपक जिन की ज्योती ।

क्यों यह चढ़ने लगीं
चमेली की कोमलतर कलिकायें—
हार बनाती हुई हृदय पर
बिखर-बिखर दायें-बायें ?

‘क्यों रह-रह वह-वह देते हैं’
क्या अपराध किया मैंने ?
क्या भीतर कठुणाढ्य छुपा है
ये आ गये पता देने ?

त्रिधारा



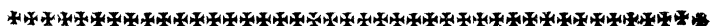
क्या दूषित प्रतिबिम्ब पड़ गया
अतः स्वच्छसर होने को
छूटे हैं अमृत के सोते
मृदुल पुतलियाँ धोने को ?

देखा जिन नयनों से जीवन-धन
बनसे आसानी से,
आनन न दीखें उन्हें भर दिया
अतः हृदय के पानी से ?

अथवा, कई मास का प्रीषम
रहा घनों को समझाता,
वन्हें सुयोग वायु आदर से
दौड़ पड़ा हुत बरसाता ?



त्रिधारा



सिंचित था जो हृदय कोष में
करुणा-रस-पूरित सामान,
उसे बहाने बैठ पड़ी हो
आया जान नया महमान ?

जिसने अपनी भूख बुझाई
कारागार—प्रहारों से,
उसकी प्यास मिटाती हो क्या
नयनों की जल-धारों से ?

फिड़की, ठोकरा, गाली से क्या
कायरता आई जानी,
इसीलिये यह घड़ा रही हो
जाग्रति-रूप नया पानी ?



त्रिधारा



लूटा हुआ बाण - हूँ क्या
बोधरी धार उसकी जानी,
धन्वा पर चढ़ने के पहिले,
चढ़ा रही उस पर पानी ?

जीता पाश जो मुरझाया
ग्रीष्म की नादानी से,
अपना पौधा सींच रही हो
बन-मालिनि ! इस पानी से ?

बलि होने में मज्ज-हृदय हो
करते लख खींचा तानी,
राष्ट्र-देवि ! करने आ बैठी
क्या मुझ को पानी-पानी ?



त्रिधारा



चोर दाकुओं का साथी हूँ
दूषित हुआ छिद्र छल से,
करती हो पढ़ मन्त्र-मुक्ति का
मुझे पवित्र नेत्र-जल से ?

अम हो गया, साधना साथी
देव बना, ऐसा अविवेक—
होने से, करने बैठी हो
क्या यह तुम मेरा अभिषेक ?

मातृभूमि-हित के कष्टों का
राज्य पुनः पाऊँ सविवेक,
सिंहासन मिलने के पहिले
क्या यह करती हो अभिषेक ?



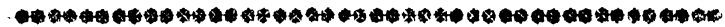
त्रिधारा



आते हैं स्वातन्त्र्य-देवता
उसके चरण धुलाने में,
सिखा रही हो साथी होऊँ
अविरल अश्रु बहाने में ?

‘स्नेह-दूध कब से रक्खा है,
लूँ नवनीत चलाकर चक्र,’
उसे जमाने डाल रही हो,
हृदय-भाँड से प्यारा तक्र ?

कहती हो क्या—‘आर्य-भूमि की
भीगोपाल लाज राखें’
तब तक दम मत लो जब तक हैं
मेरी आश-भरी आँखें ?



त्रिधारा



हृदय-देश में आते हैं क्या
देवी ! दिग्ग्य विचार-सुरेश,
विमलवारि के, पथ-सिचन से,
है स्वागत का यत्न विशेष ?

श्रीस्वतन्त्रता की वेदी पर,
अंग पुष्प होकर निश्चल—
देख चढ़ा पूजा हित लाई
नयनों की गंगा का जल ?

में जाता हूँ युद्ध-क्षेत्र में
अश्रु-बिन्दु से अतः निडर,
लिखती हो—‘जीतो तो लौटो’—
पृष्ठ-पत्र पर ये अक्षर ॥



त्रिधारा



मिट्टी का पुतला हूँ उसमें
दे-दे नयनों की जलधारा,
पंक बनाती हो कर होती
क्या माँ का मन्दिर तैयार ?

कठिन क्रूरताओं से देखा
विदलित हृदय हुआ सारा,
अमृत स्रोतों छोड़ रही हो
गरम-गरम यह जलधारा ?

बड़ा प्रेम-पिंजड़े का पाला
हंस पलट आया लख-लख,
नयन-सीपियों की मुक्ताएँ
चुगा रही हो क्या रख-रख ?



त्रिधारा



और इलाजों से निराश हो
दे कर स्नेह-अग्नि का ताव,
जीवन-लोशन छिड़क रही हो,
भरें तुरन्त हृदय के घाव ?

हृदयज्वर व्याकुल करता था
मिलन-यटी ने साधा काज,
उतरा ताप इसीसे बहता,
नयन-द्वार पसीना आज ?

स्नेह-सिन्धु की नादों को सुन
हृदय हिमालय तज अपना,
व्याकुल हो कर दौड़ पड़ी क्या
ये दोनों गंगा-जमना ?



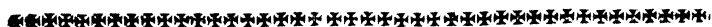
त्रिधारा



‘कहीं हृदय में पहुँच न जाये’,
लाग न पाये पथ का शोध,
तज विरोध, ठाना है आँसू
से दृढ़तर निष्क्रिय प्रतिरोध ?

निरे उपल को शिव-स्वरूप गिन
पूजन कर हो रहीं सफल,
जीवन-घट की युगल बिन्दुएँ
टपकाती हैं रंगा-जल ?

दूषित लख नवनीत हृदय की
ज्वालाएँ पहुँचाती हो ?
खौला कर खारा जल दे-दे,
उसको शुद्ध बनाती हो ?



त्रिधारा

खीभूमयी मनुहार

किन बिगड़ी घड़ियों में भाँका ?

तुझे भाँकना पाप हुआ;

आग लगे—बरदान निगोड़ा

मुझ पर आकर शाप हुआ !

जांच हुई, नभ से भूमण्डल

तक का व्यापक नाप हुआ;

अगणित बार समा कर भी

छोटा हूँ यह सन्ताप हुआ ।

अरे अशेष ! शेष की गोदी

तेरा बने बिछोना-सा ।

आ मेरे आराध्य ! बिला लू

मैं भी तुझे खिलौना सा ॥



त्रिधारा

हरियाली घड़ियाँ

‘आदि’ भूली गोद की गुड़िया रही,
भूलना ही याद आता है मुझे।
‘अन्त’ में अन्तर हज़ारों मील का,
मैं नहीं, वह देख पाता है मुझे ॥

त्रिधारा



किन्तु दोनों के स्मरण के बोझ से,
 'ही' बचा कर एक स्वर गुंजारती ।
मध्य की घड़ियाँ मधुर संगीत हैं,
 हूँ वन्हीं पर मस्त लहरें वारती ॥

कौन सी हैं ? मस्त घड़ियाँ चाह की,
 हृदय की पगडंडियों की राह की ।
दाह की ऐसी कनक-कुन्दन बने,
 मौन की-मनुहार को है-आह की ॥

भिन्नता की भीत सहसा फांद कर,
 नैन प्रायः जूझते लेखे गए ।
बिन सुने हँसते, चले चलते हुए,
 बिना बोले बूझते देखे गए ॥



त्रिधारा



नित्य ही बेचैन कारागार या,
रोज़ कैदी बन्द कर लाए गए ।
कामिनी कहने लगी 'दिन चाह का',
भामिनी बोली 'हमारे व्याह का' ॥

किन्तु यह दिन व्याह का, यह गालियाँ,
जानती है सिर्फ भाँसी-वालियाँ ।
या कि फिर मंसूर को दूल्हा मिले,
फूल यौवन का सुशूली पर खिले ।

भूलती क्यों बालिके ! कलिके ! बता,
नेक हँस पाऊँ अरी आली कहाँ ?
तोड़ प्यारे के चरण पर ढाल दे,
है कहाँ ?—प्यारा हृदय-माली कहाँ ?



त्रिधारा



स्मृति के मधुर बसन्त

पधारो स्मृति के मधुर बसन्त !

शीतल स्पर्श मन्द मदमाती,

मोद सुगन्ध लिए हठलाती,

यह काश्मीर-कुसुम सकुचाती, निश्वासों की पवन प्रचारो ॥ स्मृति के० ॥



त्रिधारा

तरु-अनुराग लालसा-हाली,
सिमटी प्रीति-लता हरियाली,
विमल अश्रु-कलिकाएँ, उन पर तोड़ूँगी, ऋतुराज ! उभारो ॥ स्मृति के० ॥

तोड़ूँगी ? ना, लिखने दूँगी,
दो दिन हिलने-मिलने दूँगी,
हिला-हुला दूँगी शाखाएँ, 'तुने सकल संसार'—उचारो ॥ स्मृति के० ॥

आते हो ? वह छवि दरसा दो,
मेरा जीवन-धन हरषा दो,
फूलों की बरसा बरसा दो, डूबूँ, तैरूँ, सुध न विसारो ॥ स्मृति के० ॥

दोनों भुजा पकड़ ली पापी,
तू जलधर, मैं बनी कलापी,
नाचें गाएँ पागल बन बन ज्ञान, जरा जर्जरता टारो ॥ स्मृति के० ॥

त्रिधारा

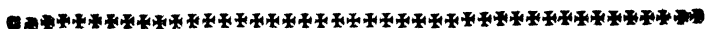
भीजे अम्बर वाली ल्याली !
चढ़ तरुवर की डाली-डाली,
ठड्डे चलो मेरे वनमाली ! "पगली !" कह तुम वहाँ पुकारो ॥ स्मृति के० ॥

नहीं, चलो हिलमिल कर फूलें,
बने विहङ्ग भूलने भूलें,
भूलें आप, भुला दें सब को, भुमण्डल पर स्वर्ग उतारो ॥ स्मृति के० ॥

नहीं, चलो हम हों दो कलियाँ,
सुसक, सिमक होवे रँग-रलियाँ,
राष्ट्र-देव रँग रँगो संभालो ! कृष्णार्णव के प्रथम पधारो ॥ स्मृति के० ॥

आओ ज़रा भ्रङ्ग बन जावें,
आँसू रस पी पी सुख पावें,
गूँजे लिपट लिपट—चुप रह,—लग जायेगी—मत मारो ॥ स्मृति के० ॥



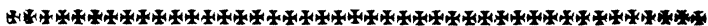


वेदना गीत से

कम्पन के तागे में गूँथे-से क्यों लहराते हो ?

मारुत ही क्यों, तरुवर-कुञ्जों में न विलस पाते हो,
और, पंखियों की तानों से ज़रा न टकराते हो,
टेकड़ियों के द्वार, कहां, कैसे चढ़कर आते हो ?
आते-जाते हो, या मुझ में आकर छिप जाते हो ?

अमित की मति सी परम गँवार
आह की मिटती सी मनुहार—
पूछती है तुम से दिलदार—



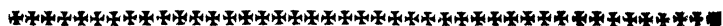
त्रिधारा



कौन देश से चले ? कौनसी मञ्जिल पर जाते हो ?
कसक, चुटकियों पर चढ़कर, क्यों मस्तक हुलवाते हो ?
कम्पन के तागे में गूँथे-से क्यों लहराते हो ?
क्या बीती है ?—आजाने दो उसको भी इस पार,
क्यों करते हैं लहराने का भूतल में न्यापार ?
चट्टानों से बनी विन्ध्य की टेकड़ियों के द्वार—
चायु विनिन्दित तरलाई पर तैर रहे बेकार—

छटपटाहट को यों मत मार,
पहिन सागर लहरों का हार,
खोल दे कोटि कोटि हृदुदार,

कहाँ भटकते, लेते प्राणों को बन राग विहाग !
शीतल अंगारों से विश्व जलाने क्यों जाते हो ?
कम्पन के तागे में गूँथे से क्यों लहराते हो ?
किसके लिए छेड़ते हो अपनी यह तरल तरंग ?
कैसे डुबोने को घोला है, यह लहरों पर रंग ?



त्रिधारा



कोई गाहक नहीं, अरे, फिर क्यों यह सत्यानाश ?
बाँस, काँस, कुम से सहने हो, लहरों का उपहास ?

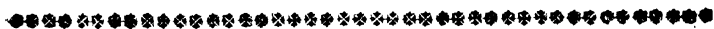
अरे वादक क्यों रहा उड़ेल,
खेलता आत्म-वात का खेल,
उड़ाता व्यर्थ स्वराँ का मेल,

यह सच है किस लिए बिना पंखों की मृदुल उड़ान ?
दूर नहीं होते, माना; पर पास भी न आते हो ?
कम्पन के तागे में गुँथे-से क्यों लहराते हो ?
मातृ ? कैसे ? कि यह सभी सौभाग्य सखे मुझ पर है ।
है जो मेरे लिए पास आने में किसका डर है ?
मेरे लिए उठेंगी, आशाओं में ऐसी ध्वनियाँ,
कहणा की बूदों, काली होंगी उनकी जीवनियाँ !

अरे, वे होंगी क्यों उस पार,
यहीं होंगी पलकों के द्वार,
पहिन मेरी श्वासों के द्वार,



त्रिधारा



आह, गा उठे, हेमांचल पर तेरी हुई पुकार—
बनने दे तेरी कराह को परसों की हुँकार—
और जवानी को चढ़ने दे बलि के मीठे द्वार,
सागर के धुलते चरणों से उठे प्रश्न इसबार—
अन्तस्तल से अतल वितल को क्यों न वेध जाते हो ?
अज्ञी वेदना-गीत गगन को क्यों न छेद जाते हो ?
उस दिन ? जिस दिन महानाश की धमकी सुन पाते हो !
कम्पन के तागे में गूँथे-सं क्यों लहराते हो ?





कैदी और कोकिला

क्या गाती हो, क्यूँ रह-रह जाती हो—कोकिल, बोलो तो ?
क्या लाती हो ? सन्देशा किसका है—कोकिल, बोलो तो ?

ऊँची काली दीवारों के घेरे में,
ढाकू चोरों, बटमारों के डेरे में,
जीने को देते नहीं पेट-भर खाना,
मरने भी देते नहीं—तड़प रह जाना ।

जीवन पर अब दिन-रात कड़ा पहरा है,
शासन है, या तम का प्रभाव गहरा है,

हिमकर निराश कर गया रात भी काली,
इस समय कालिमामयी जगी क्यूँ आली ?

क्यूँ हूक पड़ी ? वेदना—बोझवाली सी—कोकिल, बोलो तो ?
क्या लुटा ? मृदुल वैभवकी रखवाली-सी—कोकिल, बोलो तो ?



त्रिधारा



बन्दी सोते हैं, है घरंर श्वासों का,
दिन के दुख का रोना है निश्वासों का,
अथवा स्वर है—लोहे के दरवाज़ों का,
झूटों का या सन्त्री की आवाज़ों का,
या करते गिनने वाले हा-हा-कार,
सारी रातों है—एक, दो, तीन, चार !

मेरे आँसू की भरी उभय जब प्याली,
बेसुरा !—(मधुर) क्यों गाने आई आली ?

क्या हुई बावली, अर्द्धरात्रि को चीखीं—कोकिल, बोलो तो ?
किस दावानल की ज्वालाएँ हैं दीखीं—कोकिल, बोलो तो ?

निज मधुराई को कारागृह पर छाने,
जीके घावों पर तरलामृत बरसाने,
या वायु-विटप वल्लरी चीर हठ ठाने,—
दीवार चीरकर अपना स्वर अज़माने,

या लेने आई मम आँखों का पानी,
नभ के ये दीप बुझाने की है ठानी !



त्रिधारा



खा अन्धकार करते वे जग-रखवाली,
क्या उनकी आभा तुम्हे न भाई आली ?
तुम रवि किरणों से खेल जगत को रोज़ जगाने वाली—
कोकिल, बोलो तो,
क्यों अर्धरात्रि में विश्व जगाने आई हो मतवाली—
कोकिल, बोलो तो ?
दूबों के आँसू धोनी, रवि-किरणों पर,
मोती बिखराते विन्ध्या के झरनों पर,
ऊँचे उठने के ब्रतधारी इस वन पर,
ब्रह्माण्ड कँपाने उस उदण्ड पवन पर,
तेरे मीठे गीतों का पूरा लेखा,
मैंने प्रकाश में लिखा सजीला देखा;
अब सर्वनाश करती क्यों हो ? तुम जाने या वे-जाने,—
कोकिल बोलो तो ?
क्यों तमोरात्रि पर विवश हुई लिखने मधुरीली तानें—
कोकिल बोलो तो ?



त्रिधारा



क्या ? देख न सकती जंजीरों का पहना ?

हथकड़ियाँ क्यों ? यह ब्रिटिश राज का गहना !

गिट्टी पर ? अंगुलियों ने लिखे गान !

कोल्हू का चरखा हूँ ?—जीवन की तान ।

हूँ मोट खींचता लगा पेट पर जूँभा,

खाली करता हूँ ब्रिटिश अकड़ का कूँभा ।

दिन में मत कहणा जगे, रुलाने वाली,

इसलिये रात में गजब ढा रही आली ?

इस शान्त समय में अन्धकार को भेद रो रही क्यों हो—

कोकिल बोलो तो ?

चुपचाप, मधुर विद्रोह-बीज इस भाँति बो रही क्यों हो—

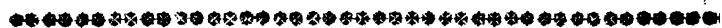
कोकिल, बोलो तो ?

काली तू रजनी भी काली,

शासन की करनी भी काली,

काली लहर, कल्पना काली,

मेरी काल-झोठरी काली,



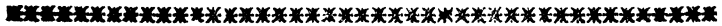
त्रिधारा

टोपी काली, कम्बल काली,
मेरी लोह-श्रृंखला काली,
पहरे की हुंकृति की ब्याली,
तिस पर है गाली ! ऐ भाली !

इस काले संकट-सागर पर—मरने की मदमाती—
कोकिल बोलो तो ?
अपने चमकीले गीतों को किस विधि हो तैराती—
कोकिल बोलो तो ?

तुझे मिली हरियाली डाली,
मुझे नसीब कोठरी काली,
तेरा नभ भर में संचार,
मेरा दस फुट का संसार ।
तेरे गीतों उठती वाह,
रोना भी है मुझे गुनाह !
देख विपमता तेरी मेरी;
बजा रही तिस पर रणभेरी !

त्रिधारा



इस हुंकृति पर, अपनी कृतिसे, और कहो क्या कर दूँ ?—

कोकिल, बोलो तो ?

मोहन के वृत पर, प्राणों का आसव किम में भर दूँ—

कोकिल, बोलो तो ?

फिर कहूँ—अरे क्या बन्द न होगा गाना,
यह अन्धकार में मथुराई दफनाना !
नभ सीख चुका है कमज़ोरों को खाना
क्यों बना रहा अपने को उसका दाना ?

तिस पर, कशुणा-गाहक बन्दी सोते हैं,

स्वप्नों में स्मृतियाँ श्वासों से धोते हैं ।

सीकचे-रूपिणी लोहे की पाशों में,
क्या भर देगी ? बोली निन्दित लाशों में,

क्या, घुस जायेगा रुदन तुम्हारा निश्वासों के द्वारा—

कोकिल बोलो तो ?

और प्रात में हो जायेगा उलट-पुलट जग सारा—

कोकिल बोलो तो ?





सातपुड़ा शैलके एक भरनेको देखकर
कितने निर्जनमें दीखा, रे मुक्तहार वाणीके
कवि, मंजुल वीणाधारी, नवप्रकृति कल्याणीके ;
किस निर्भरिणीके धन हो, पथ भूले हो किस घरका ?
है कौन वेदना, बोलो, कारण क्या करुण-स्वरका ?
मेरी वीणाकी कटुता, धो डाल तरल तारोंसे,
जी मुझ-सा पागल होके, यह बड़े हृदय-द्वारोंसे ।
चढ़कर, गिरकर, फिर उठकर, कहता तू अमर कहानी,
गिरिके अंचल में करता कृजित कल्याणी वाणी ।



त्रिधारा

इस ध्वनिपर प्रतिध्वनि करती, रह रहकर परवत-माला,
यह गुफा गीत गाती है श्रोड़े नव हरा दुशाला ।
बे-जाना नाद सुनाता, जाना-सा जोमें पाता,
श्रवनी-तल क्या, हीतल में तू शीतल धूम मचाता ।
क्या तूने ही नारद को सिखलाया ता-ना-ना-ना ?
क्या तुझसे ही माधवने सीखा था बीन बजाना ?
क्या मेरा गीत मधुर है ?—पड़ गया तुम्हारा पात्री !
ऊँचे-नीचे टीलोंसे, मैंने कब कही कहानी ?
पाषाणोंसे लड़कर भी ठंडक—कब मैंने जानी ?
कब जीका मल धो पाता, मेरी आंखोंका पानी ?
कब श्रमित पा सके मुझमें, शीतल तुपारकी धारा ?
मैंने प्रियतमका रुख कब गिरकर-उठकर पथ धारा ?
कब मेरी बूंदों, मेरे हैं तट हरियाले होते !
कब ग्वाले मुझमें आये, अपने चरणों को धोते ?
मैं गीत साँसमें गुथ कब आठों पहरों गाता हूँ ?
कब रवि-शशिका समता से स्वागत मैं कर पाता हूँ ?

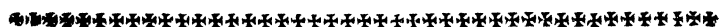
त्रिधारा

मैं भूमण्डलको कृतिसे हूँ कुम्भीपाक बनाता,
तू स्वर्गगा बन करके सुर-लोक महीपर लाता ।
लय मेरी प्रलय न करती तरुणोंके हृदय उतरके,
तू कल-कल कहला लेता, पंछी-दल पागल करके ।
मेरी गरीब करुणापर, वे' मस्तक डोल न पाते,
तेरी गतिपर तरु-नृण हैं, अपनी फुँगनियाँ हिलाते ।
मैं पथके अवरोधोंसे, पथ-भूला रुक जाता हूँ,
भारी प्रवाह होकर भी, विषयोंमें चुक जाता हूँ ।
पर तेरे पथ को रोकें जिस दिन काली चट्टानें,
सार्थी तरु-लता भले हो तुझको लग जाय मनानें,
तब भी तू—ज़रा ठहरकर, सीकर संप्रहकर अपने,
चट्टानों के मनसूबे, चढ़कर, कर देता सपने ।
या हृदय वेध बज्रोंके शीतल सेना ले अपनी,
प्रियतम-प्रदेश चल देता, पहने नीली-सी कफनी ।
मैं उपकारी के प्रति भी, ममता बारूद बनाता,
हूँ अपनी कुटी जलाता, उसके घर आग लगाता ।

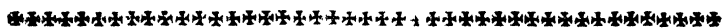
त्रिधारा

तू 'मित्र,—प्रमत्त करों से प्रीपम में प्राण सुखाता,
पर उसका स्वागत गाकर, किरनों पर अर्घ्य चढ़ाता ।
मेरे गीतों की प्यारे ! बूढ़ें सूखने न पार्ती,
विस्मृति उनको करमें ले, अपना शृङ्गार बनाती ।
पंछी दलने पर तेरे गीतोंका गान किया है,
हरिने तेरी वाणीको अमरत्व प्रदान किया है ।
क्या जाने तरु पंखेरु तुझको लख क्यों जीते हैं ?
तेरा कल-कल पीते हैं, या तेरा जल पीते हैं ?
अपने पंखोंसे किसने, नभ-छेदन इन्हें सिखाया ?
आकाश-लोकका किसने, इनको गन्धर्व बनाया ?
श्यामल धन ! श्वासों-जैसी बांसुरी न दिखलाती है,
पर तेरे गीतोंकी धुन स्वच्छन्द सुनी जाती है ।
ये छोटे-छोटे तरुवर, रह-रह ताल देते हैं,
तुझसे प्रसादमें ठंडे प्यारे मोती छेते हैं ।
कितने प्यारे तरु फूले, कलियोंका मुकुट लगाये,
पर तेरी गोदीमें हैं, वे अपना शीश भुकाये ।

त्रिधारा



मानो वे गले लिपटके, कहते—‘उपकार अमित हैं,
साँवले तुम्हारी करुणा, बस, तुमको ही अपित है।’
फूलोंको श्याम ! चढ़ाकर जब वे सुगन्ध देते हैं,
पत्ते पंखे बन, मारुन जब मन्द-मन्द देते हैं;
तुम अपने पास न रखकर, ज्यों का ल्यों उन्हें बहाते,
लहरोंमें नचा-नचाकर, त्रियतमके घर ले जाते ।
बनमाली बन-तरुओंमें तुझसे खिलवाड़ मचाते,
गिरि-शिखर, गोद लेनेमें तुझपर हैं होड़ लगाते ।
जब घनश्याम आ जाते, तुझपर जीवन ढुलकाते,
हँस-हँसकर इन्द्र-धनुषका हैं मुकुट तुझे पहनाते ।



श्री सुभद्रा कुमारी चौहान

त्रिधारा



प्रेम-श्रृंखला

क्या कहते हो, आ न सकोगे
तुम मेरी कुटिया की ओर ?
किन्तु सहज ही तोड़ सकोगे
कैसे प्रबल प्रेम की डोर ?

मेरे इस पवित्र बन्धन में
मोह नहीं है, राग नहीं ।
मेरे इस स्नेही-स्वभाव में
है कलुषित अनुराग नहीं ॥



विधारा

मेरी इन साध्वी साधों में
तड़प नहीं है, आह नहीं ।
मेरे स्निग्ध मधुर भावों में
शीतलता है, दाह नहीं ॥

मेरी अभिलाषाओं में है
कोमलता, उन्माद नहीं ।
मेरी आलोकित आशा में
आभा है, अवसाद नहीं ॥

इस उल्लासभरे जीवन में
तिल-भर हाहाकार नहीं ।
है अटूट यह प्रेम-शृंखला,
दुर्बल पीड़ित प्यार नहीं ॥

त्रिधारा



कैसे इसको तोड़ सकोगे ?
फिर से हृदय टटोलो तो !
क्या सचमुच तुम आ न सकोगे ?
सोच-समझ कर बोलो तो ॥

तुम कहते हो आ न सकोगे,
मैं कहती हूँ आओगे ।
सखे ! प्रेम के इस बन्धन को
यों ही तोड़ न पाओगे ॥

विषय-विकार-हीन दो हृदयों
का यह पावन स्नेह-विधान,
आत्मोन्नति के पथ पर चढ़ने
का बन जायेगा सोपान ॥



त्रिधारा

घर-बाहर की सूनी घड़ियाँ
में इसकी स्मृतियाँ प्यारी,
द्योतक होंगी सत्य-मार्ग की,
निश्चय होंगी सुखकारी

पल-भर को ही शान्ति-सहित फिर
इस पर करो विचार सखे !
देखो तो कितना सुन्दर है
दो हृदयों का प्यार सखे !

त्रिधारा



मेरा जीवन

मैंने हँसना सीखा है
मैं नहीं जानती रोना ।
बरसा करता पल पल पर
मेरे जीवन में सोना ।

मैं अब तक जान न पाई
कैसी होती है पीड़ा ?
हँस-हँस जीवन में कैसे
करती है चिन्ता क्रीड़ा ?



त्रिधारा

जग है असार सुनती हूँ
मुझको सुख-सार दिखाता ।
मेरी आँखों के आगे
सुख का सागर लहराता ।

कहते हैं होती जाती
खाली जीवन की ध्याली ।
पर मैं उसमें पाती हूँ
प्रतिपल मदिरा मतवाली ।

वत्साह, उर्मग निरंतर
रहते मेरे जीवन में ।
उल्लास विजय का हँसता
मेरे मतवाले मन में ।

त्रिधारा



आशा आलोकित करती
मेरे जीवन के प्रतिक्षण ।
हैं स्वर्ण-सूत्र से वलयित
मेरी असफलता के घन ।

सुख भरे सुनहले बादल
रहते हैं मुझको घेरे ।
विश्वास, प्रेम, साहस हैं
जीवन के साथी मेरे ॥



त्रिधारा



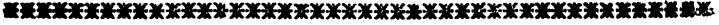
वीरों का कैसा हो वसन्त ?

वीरों का कैसा हो वसन्त ?

आरही हिमांचल से पुकार,
है उदधि गरजता बार-बार,
प्राची, पश्चिम, भू, नभ अपार,
सब पूछ रहे हैं दिग्-दिगम्त,
वीरों का कैसा हो वसन्त ?



त्रिधारा



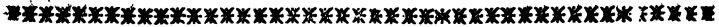
फूली सरसों ने दिया रंग,
मधु लेकर आ पहुँचा अनंग,
वधु-वसुधा पुलकित भंग-भंग,
हैं वीर वेश में किन्तु कंत,
वीरों का कैसा हो वसन्त ?

भर रही कोकिला इधर तान,
मारू बाजे पर उधर गान,
है रंग और रण का विधान,
मिलने आए हैं आदि-कंत ।
वीरों का कैसा हो वसन्त ?

गलघाटें हों, या हो कृपाण,
चल चितवन हो, या धनुष-पाण,
हो रस-विलास या दलित-त्राण,
अब यही समस्या है दुरंत,
वीरों का कैसा हो वसन्त ?



त्रिधारा



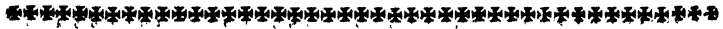
कह दे अतीत अब मौन त्याग,
लंके ! तुझमें क्यों लगी आग,
ऐ कुरुक्षेत्र ! अब जाग, जाग,
बतला अपने अनुभव अनंत,
वीरों का कैसा हो वसन्त ?

हल्दी घाटी के शिला-खंड,
ऐ दुर्ग ! सिंह-गढ़ के प्रचंड,
राणा, ताना का फर घमंड,
दो जगा आज स्मृतियाँ उवलंत,
वीरों का कैसा हो वसन्त ?

भूषण अथवा कवि चन्द नहीं,
विजली भर दे वह छन्द नहीं,
है कलम बँधी, स्वच्छन्द नहीं,
फिर हमें बतावे कौन ? हंत !
वीरों का कैसा हो वसंत ?



त्रिधारा



अपराधी है कौन, दण्ड का भागी बनता कौन ?

अपराधी है कौन ? दण्ड का
भागी बनता कौन ?
कोई उनसे कहे कि पल भर
सोचें रह कर मौन ।

वे क्या समझ सकेंगे
उनकी खोजमयी मनुहार ।
उनका हँस कर कह देना, "सखि,
त्रिभ न सकेगा प्यार ।



त्रिधारा



यहीं कुचल दो, यहीं मसल दो
मत बढ़ने दो बेल
निर्मम जग के आघातों से
बिगड़ जायगा खेल ।

मेरे लिये न करना, सखि,
तुम थोड़ा सा भी त्याग ।
जलने दो, मुझ को सुखकर है
यह जीवन की भाग ।

रहने दो क्यों मोल ले रही
हो नाहक उम्माद ।
जीवन का सुख बेच रही हो
लेकर विषम बिषाद ।



त्रिधारा



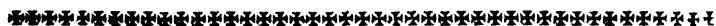
स्नेह-सलिल से ओत-प्रोत मन
भर नैनों में नीर ।
इस उम्मादी के समीप आ
होना नहीं अधीर ।

इन नैनों के प्रेम-वारि से
बुझ न सकेगी आग ।
भभक उठेगी अग्नि न गाना
सखि ! तुम करुण विहाग ।

मैं जैसा हूँ, वही तरह बस
रहने दो छुपचाप
यह है मेरी अग्नि जल रहा
हूँ मैं अपने आप ॥”



त्रिधारा



बार-बार वे कह जाते हैं
भर आँखों में प्यास ।
खो बैठे हैं वह जीवन का
हास और उल्लास ।

मुझे हाट से हटा उन्होंने
मोल लिया उन्माद ।
सखा बन गया जीवन का अब
उनके विपम विपाद !

है प्रफुल्लता के परदे में
भीषण-भीषण दाह ।
अपनी इन आँखों से मैं सब
देख रही हूँ आह !



त्रिधारा



जलती हूँ, ज्वाला उठती है
पा नैनों का नीर ।
क्रान्ति मग्न रही है जीवन में
हूँ उद्भ्रान्त क्षीर ॥

नहीं मार्ग अज्ञात, किन्तु मैं
फिर भी हूँ गतिहीन ।
वैभव की गोदी में हूँ पर
फिर भी दीन-मलीन ।

कोई उनसे कहे कि मेरा
ही है सब अपराध ।
उनको अयना कहुँ हृदय में
मेरे ही थी साथ ।



त्रिधारा



बही साथ अपराध हुई,
हो गई हृदय का दाह ।
प्रायों का सम्पाद बन गई
मेरी पागल चाह ।



त्रिधारा



मेरी प्याली

अपने कविता-कानन की
मैं हूँ कोयल मतवाली ।
मुझ से मुस्वरित हो गाली
उपवन की हाली-हाली ।

मैं जिधर निकल जाती
मधु मास उतर आता है ।
गीरस जन के जीवन में
रस धोल-धोल जाता है ।



त्रिधारा

सूखे सुमनों के दल पर
मैं मधु संचालन करती ।
मैं प्राण-हीन का अपने
प्राणों से पालन करती ।

मेरे जीवन में जाने
कितना मतबलापन है ?
कितने हैं प्राण छलकते
कितना मधु-मिश्रित मन है ?

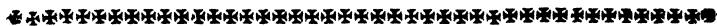
शोषों हाथों से भर-भर
मैं मधु को सदा लुटाती ।
फिर भी न बन्नी होती है
प्याली भरती ही जाती ।

त्रिधारा

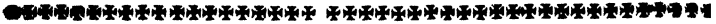


मनुहार

क्यों रुटे हो, क्या भूल हुई,
किस लिए आज हो खिल हुए ।
जो थे अभिन्न दो हृदय देव !
वे आज कहो क्यों भिन्न हुए ?
सुख की कितनी अनुलित वड़ियं
हमने मिल साथ बिताई हैं ।
कितनी ही कठिन समस्याएँ
हमने मिलकर सुलझाई हैं ।

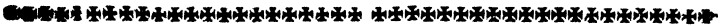


त्रिधारा



मिळ बैठे दोनों जहां कहीं
संसार हमारा वहीं हुआ ।
था स्वर्ग तुच्छ इन आखों में
यदि एक वहाँ पर नहीं हुआ ।
तुम थे मेरे सर्वस्व और मैं
जीवन—ज्योति तुम्हारी थी ।
मैं तुममें थी, तुम मुझ में थे,
हम दोनों की गति म्यारी थी ।

हे ज्ञात मुझे सौ-सौ मेरे
अपराध क्षमा करते थे तुम ।
मेरी कितनी श्रुटियों पर भी
कुछ ध्यान नहीं धरते थे तुम ।
फिर क्या अपराध हुआ जिससे
रूखा व्यवहार तुम्हारा है ?
इन अपराधों से क्या कोई
अपराध इस समय म्यारा है ?



त्रिधारा

बोलो, अब कृपा करो, कह दो,
कह दो, अब रहा नहीं जाता ।
यह मौन तुम्हारा हे मानी !
सुझ से अब सहा नहीं जाता ।
हँसती हूँ, बातें करती हूँ,
खाती-पीती हूँ, जीती हूँ ।
यह पीर छिपाए अन्तर में
सुपचाप अश्रु-कण पीती हूँ ।

यह मर्म-कथा अपनी ही है
औरों को नहीं सुनाऊँगी ।
तुम रूठो सौ-सौ बार तुम्हें
पैरों पड़ सदा मनाऊँगी ।
बस, बहुत हो चुका, क्षमा करो,
अवसाद हटा दो अब मेरा ।
सो दिया जिसे मद में मैंने
लाभो, देदो वह सब मेरा ।

त्रिधारा

प्रिय ! हृदय-देश में फिर अपने
जम जाने दो आसन मेरा ।
बन जाने दो रानी फिर से
देदो, देदो शासन मेरा ।
देदो सुख का साम्राज्य मुझे,
दोनों दिल फिर मिल जाने दो ।
मुरझाई जातीं आशा की
कलियों को फिर खिल जाने दो ।

उल्लास

शैशव के सुन्दर प्रभात का
मैंने नव विकास देखा ।
यौवम की मादक लाली में
जीवन का हुलास देखा ।

जग-भङ्गा-भङ्कोर में
आशा-लतिका का विलास देखा ।
आकांक्षा, उत्साह, प्रेम का
क्रम-क्रम से प्रकाश देखा ।

त्रिधारा



जीवन में न निराशा मुझको
कभी रहलाने को आई ।
जग झूठा है यह विरक्ति भी
नहीं सिखाने को आई ।

परिदल की पहिचान कराने
नहीं घृणा आने पायी ।
नहीं अशान्ति हृदय तक अपनी
भीषणता लाने पायी ।

मैंने सदा किया है सब से
मधुर प्रेम का ही व्यवहार ।
विनिमय में पाया सदैव ही
कोमल अन्तस्तल का प्यार ।



त्रिधारा



मैं हूँ प्रेममयी, जग दिखता
मुझे प्रेम का पारावार ।
भरा प्रेम से मेरा जीवन
लुटा रहा है निर्मल प्यार ।

मैं न कभी रोई जीवन में,
रोता दिखा न यह संसार ।
मृदुल प्रेम के ही गिरते हैं
आँखों से मोती दो-चार ।



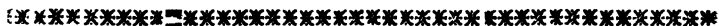
त्रिधारा



स्वागत-साज

ऊपे सजनि ! अपनी लाली से
आज सजा दो मेरा तन,
कला सिखा खिलने की कलिके !
विकसित कर दो मेरा मन ।

हे प्रसून-दल ! अपना वैभव
बिखरा दो मेरे ऊपर,
सुभ्रसी मोहक और न कोई
कहीं दिखाई दे भू पर ॥



क्रिष्णरा



माधव ! अपनी मनोमोहिनी
मधु-माया मुझ में भर दो,
पल भर को कर कृपा सजीले !
मुझ को भी सजित कर दो ।

अरी विहंगिनि गर्वीली,
ओ ऋतुपति के प्राणों की प्राण !
हे कलकंठ ! सिखा दे पल भर
के ही लिए मुझे कल गान !

अरी मयूरी ! नर्तन तेरा
मोहित करता है धन को.
मुझे सिखा दे कला, मनेह लूं
मैं अपने मन के धन को ।



त्रिधारा



सखि ! मेरे सौभाग्य-सदन में
लाली छा जाएगी आज,
वे आएंगे, मुझे सजा दो
दे दे कर तुम अपना साज ।

उस महान् वैभव के आगे
मैं भी ठहर सखी क्षण-भर ।
उस विशालता के सम्मुख सखि !
मेरा भी कुछ हो कण-भर ।

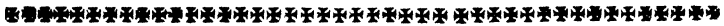


त्रिधारा

करुण-कहानी

आह ! करोगे क्या सुन कर तुम
मेरी करुण कहानी को ।
भूल चुकी मैं हवयं आज
उस स्वप्न लोक की रानी को ॥

त्रिधारा



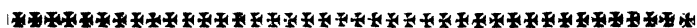
जो चुन कर आकाश कुसुम का
हार बनाने वाली थी ।
उनके काटों से इस उर का
साज सजाने वाली थी ॥

अपने वैभव को बटोर कर
कहीं चढ़ाने वाली थी ।
उन्हें पकड़ने को यह दुर्बल
हाथ बढाने वाली थी ॥

पर क्या संभव है पा जाना
नील गगन का प्यारा फूल ।
जो मेरी आँखों में बरघस
रहा पुतलियों के संग भूल ॥



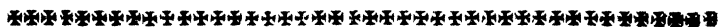
त्रिधारा



मुझे वहाँ तक पहुँचाने में
हो न सका विधि भी अनुकूल ।
सजनि ! वायु भी तो बहती थी
उस दिन मेरे ही प्रतिकूल ॥

थे अप्राप्त तो मुझे सुनहले
सपने ही दिखलाये क्यों ?
छिप—छिप बिना सूचना के
मेरे मातस में आए क्यों ?

मधुमय पीड़ा से मेरी
रीती प्याली भरलाये क्यों ?
जलते जीवन में जल के
दो-चार बिन्दु टपकाए क्यों ?



त्रिधारा



अरे प्राण ! इस भाँति निठुर
होकर ही तुमको जाना था ?
तो फिर क्यों ? केवल दो दिन के
लिए मुझे पहिचाना था ?

चपला की सी चमक दिखाकर
ही यदि फिर छिप जाना था ।
तो प्राणेश ! तुम्हें मेरे
प्राणों में नहीं समाना था ॥

आज भर रही है निर्भर-सी
भर-भर यह आँखे अविराम ।
नहीं खोजने पर भी पाता
यह उद्भ्रान्त हृदय विश्राम ॥



त्रिधारा



बाल सूर्य की प्रथम रश्मि के
साथ साथ ही आई शाम ।
जल तम में प्रञ्ज्वलित हो उठां
वह वियोग—बाला उदाम ॥

यहीं रुको बस, बहुत सुन लिया
तुमने उसका कण्ठ कलाप ।
यहीं करो इति आगे सुनकर
नाटक ही होगा संताप ॥

अर्थ हीन है, सारहीन है
उस पगली का सभी प्रकाप ।
भूलो उसे, मूल भी जाओ
समझो उसे अरण्य-विलाप ॥



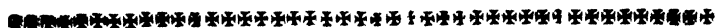
त्रिधारा



मुझ अकिञ्चना के प्रति होकर
द्रवित न होना कहीं विकल ।
मेरी ऊष्म उसाँसों से मत
भुलसा लेना अन्तस्तल ॥

इस एकान्त तरल ज्वाला में
मिटने दो मुझको जल-जल ।
एक जलन ही तो जीवन है,
प्रतिपल उसका प्रेमानल ॥

विस्मृति में विलीन होने दो
अब अतीत की रानी को ।
रहने दो, कर दया न पूछो
मेरी करुण कहानी को ॥



त्रिधारा

प्रथम दर्शन

प्रथम जब उनके दर्शन हुए हठीली आँखें झड़ ही गईं ।
बिना परिचय के एकाएक हृदय में उलभन पड़ ही गई ॥
मूँदने पर भी दोनों नेत्र खड़े दिखते सम्मुख साकार ।
पुतलियों में उनकी छबि श्याम मोहिनी जीवित जड़ ही गई ।
भूल जाने को उनकी याद किये कितने ही तो उपचार ।
किन्तु उनकी वह मञ्जुल मूर्ति छाप-सी दिल पर पड़ ही गई ॥



सेनानी का स्वागत

हम द्वारे या थके सूझी-सी
किन्तु युद्ध की गति है ।
हमें छोड़कर चला गया
पथ-दर्शक सेनापति है ।

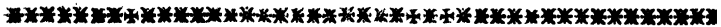
त्रिधारा



अन्धकार छा रहा भ्रमित सी
आज हमारी मति है ।
जिधर उठाते दूष्टि दिखाई
देती क्षति 'ही क्षति है ॥

ऐसी घोर निराशा में नुम
आशा बनकर आओ ।
स्वागत है शत्रु वार विजय का
आओ मार्ग दिखाओ ॥

वह सेनापति हमें आज भी
है प्राणों से धारा ।
ऐसे विषम समय में भी है
वसका हमें सहारा ॥



त्रिधारा

पर अपने ही चक्र-व्यूह में
है वह फंसकर हारा ।
बोलो ऐ सेनानी ! अब क्या
है कर्तव्य तुम्हारा ॥

रण-भेरी का नाद सदा को
क्या अब रुक जायेगा ।
जिसको ऊँचा किया वही क्या
भगडा भुक जायेगा ॥

गोली लाठी चार्ज जेल की
वह भीषण दीवारें ।
काल कोठरी, दण्ड यातना
वे कोड़ों की मारें ॥

त्रिधारा



प्रभुता-मद से भरी शत्रु की
व्यंग्य भरी बौछारों ।
साक्षी हैं साहस की फिर हम
जीतें अथवा हारें ॥

हैं सन्तस तदपि आशा से
स्वागत आज तुम्हारा ।
एक बार फिर कह दो भंडा
जँचा रहे हमारा ॥



त्रिधारा



साध

मृत्युल कल्पना के चल पंखों
पर हम तुम दोनों आमीन ।
भूल जगत के कोलाहल को
रचलें अपनी सृष्टि नवीन ॥
वित्त विज्ञान के शान्त प्रान्त में
कल्लोलिनी नदी के तीर ।
बनी हुई हो वहीं कहीं पर
हम दोनों को पर्ण-कुटीर ॥



त्रिधारा

कुछ रुखा-सूखा खाकर ही
पीते हों सरिता का जल ।
पर न कुटिल आक्षेप जगत के
करने आवें हमें विकल ॥

सरल काव्य-सा सुन्दर जीवन
हम सानन्द बिताते हों ।
तह-दल की शीतल छाया में
चल समोर सा गाते हों ॥

सरिता के नीरव प्रवाह सा
बहता हो अपना जीवन ।
हो उसकी प्रत्येक लहर में
अपना एक निरालापन ॥

रचें हृषि रचनाएँ जग में
अमर प्राण भरने वाली ।
दिशि-दिशि को अपनी लाली से
अनुरंजित करने वाली ॥

तुम कविता के प्राण बनो मैं
उन प्राणों की आकुल तान ।
निर्जन वन को मुखरित कर दे
प्रिय ! अपना सम्मोहन गान ॥



भाँसी की रानी की समाधि पर

इस समाधि में छिपी हुई है
एक राख की ढेरी ।
जलकर जिसने स्वतन्त्रता की
दिश्य आरती फेरी ॥
यह समाधि, यह लघु समाधि, है
भाँसी की रानी की ।
अन्तिम लीलास्थली यही है
लक्ष्मी मरदानी की ॥
यहीं कहीं पर बिखर गई वह
भग्न विजय-माला-सी ।
उसके फूल यहाँ सञ्चित हैं
हैं यह स्मृति-शाला-सी ॥



त्रिधारा



सहै वार पर वार अन्त तक
लड़ी वीर बाला-सी ।
आहुति-सी गिर चढ़ी चिता पर
चमक उठी ज्वाला-सी ॥
बढ़ जाता है मान वीर का
रण में बलि होने से ।
मूल्यवती होती सोने की
भस्म यथा सोने से ॥
रानी से भी अधिक इमें श्रव
यह समाधि है प्यारी ।
यहाँ निहित है स्वतन्त्रता की
आशा की चिनगारी ॥
इससे भी सुन्दर समाधियाँ
हम जग में है पाते ।
वनकी गाथा पर निशीथ में
क्षुद्र जन्तु ही गाते ॥



श्री केशवप्रसाद पाठक की० ए०



पूछ रहे हो मेरा घर ?

पूछ रहे हो मेरा घर ?
कोलाहल से बड़ी दूर पर जहाँ खड़े हैं गिरि-गह्वर,
भर-भर भरते हैं निर्भर ।

पथन जहाँ खेला करता है पुष्प-पुंज से हिल-मिलकर,
हँसती हैं कलियाँ खिलकर ।



त्रिधारा

खग-दल कल कूजन से घपने मुखरित करते वन दिन-भर,
मधु पीते मधु-रत मधुकर ।

रजत रश्मियाँ जहाँ चन्द्र की आती-जाती छन-छन कर,
मुसकाते दिन में दिनकर ।

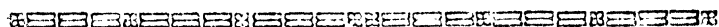
प्राण-पुलक भरता निर्जन में तरु-पत्रों का मृदु मर्मर,
स्वर-गति-लय-मय कर अन्तर ।

जहाँ तरल, शीतल जल बहता ह्रान्त, ध्रान्त मन का श्रम हर,
कल-कल में लोरी गाकर ।

शान्ति जहाँ मुख से खोती है दूर्वा के वक्षस्थल पर,
सीकर से शैया कर तर ।

घास-पात का बना हुआ है वहीं-कहीं मेरा भी घर,
छोटा-सा पर अति सुन्दर ।
पूछ रहे हो मेरा घर ?

त्रिधारा

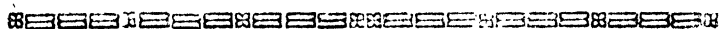


वसन्त

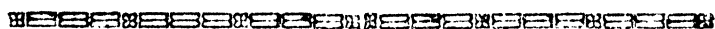
आये यदि आता है वसन्त;
अपना यौवन तो हुआ अन्न ।

ले एक साथ पाउरों अमंख्य,
मधु से पूरित कर अग्नि-अंक,
मुखरित कर हँस-हँस दिग्दिगन्त,
पल में आकर पहुँचा वसन्त,

मैं हँस न सकूँगा किन्तु हन्त;
तब आये या जाये वसन्त ।



त्रिधारा

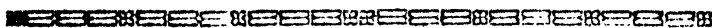


सच है, वैभव के सभी साज,
है छुटा रहा कतुराज आज,
पर हम करील हैं वही दीन,
जो रहे आज भी पात-हीन.

तब आये या जाये बसन्त,
अपना पीढ़न तो दूधरा बसन्त !

परिपूर्णा अगों को पुलक पीर,
छलकी कोमल से कर अधीर,
दे गई कहीं परिमल-पराग,
ले गई कहीं उन्माद-राग,

हैं किन्तु वही मैं विरस हूँ,
आया-न-गया जिस तक प्रसन्न !



त्रिधारा



मलयानिल कहता—“फूल ! फूल !!
ले चला तुम्हारी धूल-धूल।”
हमने तो पाये धूल-धूल,
जो हमें हृदय में हूल-हूल,

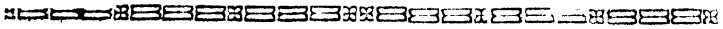
अब आये यदि आता वसन्त;
अपना यौवन तो हुआ अन्त।

यह डाल-डाल पर डोल-डोल,
अमराई में रस घोल-घोल,
कह रहा खैन—“हर-प्रन्धि खोल
कर लो प्राणों का आज मोल,

आ पहुँची मधु बेला ज्वलन्त।”
पर मुझको क्या यदि है वसन्त ?



त्रिधारा

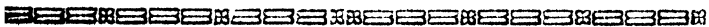


अषा में घूंघट-पट उधार
रवि-किरणों श्रानों कर सिंगार,
कर में लेकर कुंकुम-गुलाल
करती अशोक के गाल लाल,

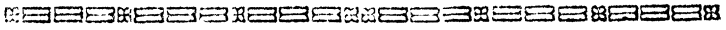
इनकी दहली नां है अनन्तः
अपने यौवन का हुआ अन्त ।

वासन्ती मजती पुनः त्याज,
है मदन-दिवस भी वही आज,
घटनी न किन्तु उर में उमंग,
बह फिरी न फिर ऋतुराज-संग,

तब आये या जाये वसन्तः
अपना यौवन तो हुआ अन्त ।

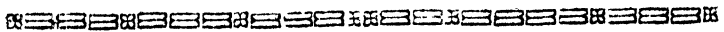


त्रिधारा

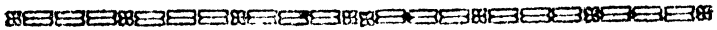


क्या कहा—“मोल लो रूप, रंग,
खिल उठें तुम्हारे अंग अंग ।”
आया था नेरा अनरंग,
कहलाता है अथ वह अनंग,

नय आये यदि आता वसन्त;
अपना यौवन तो हुआ अन्न ।



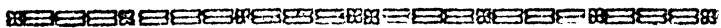
त्रिधारा



आह, क्या होगा लेकर प्यार ?
मुझे देदो मेरा संसार !
नहीं है माना, मदि मरन्द,
न अलिकुल का गुह्यन स्वच्छन्द,
किन्तु है विरस कहां वह वृन्त ?
कभी जिस पर हैस कहता अन्त

“आज किस कलिका का दर-द्वार
खोलती मधुव्रत की गुप्त्तार ?”

X X X



त्रिधारा



शुभ सरिता की लहरें लोल,
विहग-दल के मनहर मधु बोल,
प्राण की मदकल मृदु कलोल,
एक जीवन में इनका मोल ?

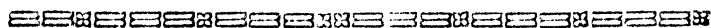
भावने ! अपनी आँखें खोल,
न पीड़ा जे रस में विष धोल ।

अरे, यह यौवन का मधु राग,
(पुष्प का मृदुतम मधुर पराग)
जलाता जीवन को बन आग,
जाग रे निद्रित मानव ! जाग,

भुक्ति से श्रेयस्कर है त्याग;
मुक्ति का साधन एक विराग ।



त्रिधारा

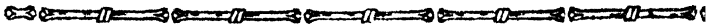


वादक से

अपने प्यासे प्राणों की
चिर अमित दाह संचित कर,
क्यों आज उड़ेल रहा है
त्रीणा के प्रति कम्पन पर ?



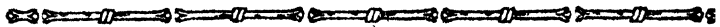
त्रिधारा



पीड़ा का प्रलय छिपा है
इन क्षीण सरल तारों में;
शत-शत उर का क्रन्दन है
इनकी मृदु झङ्कारों में।

वीणा का यह कानर स्वर्ग
सुख को विचलित कर देगा;
किसने पुलकित प्राणों में
दुःख का दंशन भर देगा।

अथ विरह-विधुर उन्मादी !
चुप, शब्द न होने पाये;
सूखे सुमनों पर सौया
हत मधुकर जाग न जाये।



त्रिधारा



शीतल सुख-शशि से लालित
अगनित कोमल कलिकाएँ
अघिदित, अकालवेला में
दुख-दव से भुलस न जाएँ ।

दुख, दैन्य, दाह, चिन्ता में
सुख शिथिल, करुण मुसकाना;
नभमय काले अम्बर में
शशि क्षीण हँसी हँस जाता ।

जग-अधर-प्रवालों पर है
यह तरल हँसी दिमकन-सी;
मत चल समीर बन इसमें
अस्थिता है जीवन की ।



त्रिधारा



मत मिला धूलि में निर्मम !

औरों के ये स्वर्णिम क्षण;

जाकर न लौटते हैं फिर

पल-भर का इनका जीवन ।

अपने चसन्त-वैभव को

जग में न कभी बिखराया,

परिहास लिये पतभर का

क्यों आज रुलाने आया ?

संवेदन, अनुकम्पा ? हट !

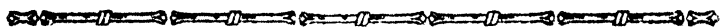
संसृति ही व्यथा-विहित है;

समदुःख की भिक्षा इसमे

मानव ! न मानवोचित है ।



त्रिधारा



अन्तर ही में पीता जा
आकुल आँखों का पानी;
पल में विलीन हो जाती
जग-सुख की क्षीण कहानी

अभिलाषा, आशा, आँसू
चेतना यही चेतन की;
वेदना, वियोग, विसर्जन
पूणता यही जीवन की।

तप प्रखर ताप में तेरी
अन्तर्गति निखर रही हो;
पर सस्मित वदनाकृति से
शीतल द्युति बिखर रही हो।



त्रिधारा



स्मृतियाँ

किसी का कहना यह प्रतिबार,
'हृदय ! मैं करता तुमको प्यार !'



त्रिधारा



हाँ, वह अनुपम वन था जब जीवन में पहली बार,
मधुर स्वप्न-सम आँखों में आये थे प्राणाधार,
मैं एकाकी, भ्रान्त-पथा जा निकली थी उस ओर,
सघन कुँज की छाया में थे वे मेरे चित्तचोर,
आह, आज भी नहीं भूलती वे मादक वदगार,
कवि की सांकेतिक भाषा में हूँ वीणा के तार,

किसी का कहना यह प्रतिबार,
“हृदय ! मैं करता तुमको प्यार।”



त्रिधारा



गूँज उठे वे स्वर निर्जन में नीरवता को चीर,
मैं अपना सर्वस्व चढ़ाने को हो उठी अघोर,
क्या जाने वह कौन मंत्र था, थी वह कैसी शक्ति ?
बस अज्ञात पथिक पर जिसने जागृत करदी भक्ति,
ज्ञात हुआ परिचित-सा उसके जीवन का विस्तार,
जाने क्यों वे सहज-सरल से भी उसके व्यवहार,

मृदुल उर की बिन मूक पुकार,
व्यक्त कर जाते उसका प्यार ।



त्रिधारा

मैं आराध्या बनी बन गये वे भी मेरे नाथ,
आज हो लिये हम दो प्राणी चिर अगन्त के साथ,
मधु निशीथ के स्तम्भ प्रहर में धाया चुपके कौन ?
जागृत थी मैं शैया से उठ खड़ी हो गई मौम,
नस-नयना मुक पर वीड़ा थी किण अटल अधिकार,
स्पंदित वक्ष, पुलक तनु भूली मैं सब लोकाधार,

वहाँ वे मेरे कर को धार,
लगे जतलाने अपना ध्यार ।

त्रिधारा

स्वमिल शरद शर्वरी से सहसा पा मधु उन्मेष,
भासित होता जब असीम का धुँधला-सा सन्देश,
तब उन्मन, विषण्ण, बेसुध गलघाँहें मेरे ढाल,
विस्तृत, क्रजु, अनन्त पथ पर चल देते वे तत्काल,
देख सुदूर क्षितिज में भवनी पर अम्बर का प्यार,
शरद क्षेत्र अवलोक लहलहे गूँथ अश्रु के हार,

पिन्हाते मुझ को बारम्बार,
व्यक्त कर अपना मादक प्यार ।

त्रिधारा



तिरता जब निशीथ-नयनाम्बुधि में स्वमिल संसार,
छायावन में किरन खोजती जब रहस्य का द्वार,
धूमिल अन्तरिक्ष में रुन-भुन किसकी चल पदचाप ?
उन्हें बुलाती ये चल देते ले मुझको सुपचाप,
मघन किसी तरु तले विलंब सहसा मेरा कर धार,
अश्रु-बिन्दु से तर कर पल भर अपलक मुझे निहार,

किसी का कहना यह प्रतिहार,
“हृदय ! मैं करता तुमको प्यार ।”



त्रिधारा



उस सुदूर पर्वत-माला पर करते हाव-विनोद,
इम विभ्राम-शाम्भित-सम दोनों जा लेटे यामोद,
वहीं निकट में निर्भर भर भर कर भरता था मन्द,
चपक अनिक धंचल धञ्जल कर चलता था स्वच्छन्द,
सहसा बनने झूमलिया हँस जब मुझको उस बार,
रूठी मैं मानिनी, मनाया था तब कर मनुहार,

किसी का कहना यह प्रतिवार
“हृदय ! मैं करता तुमको प्यार ।”



त्रिधारा



मेरी घुटियों का सदैव टैस कर देना प्रतिकार,
स्नेह-सिक्त-स्वर में समझाना मुझको बारम्बार,
फिन्तु कभी अनुचित हठ पर जब तुल जाती मैं दूर,
कुछ विरक्ति का भाव दिखवा वे रहते मुझ से दूर,
पर पाकर एकान्त में मुझे पीड़ित क्षुब्ध अपार,
गद्गद् गिरा, विकल मेरे संग वहा अश्रु की धार,

किसी का कहना यह प्रतिवार
हृदय ! मैं करता तुमको प्यार ।



त्रिधारा

जब वह भीषण युद्ध छिड़ गया काँप उठा संसार,
हँसते-हँसते मातृ-भूमि पर युवक गये बलिहार,
लेटी थी मैं खुला हुआ था मेरा शयनागार,
बह क्या ! सैनिक वेश लिये वे आये मेरे द्वार,
—“आर्ये ! देश माँगता दो मुझको हँसकर उपहार”।
“जा” कह जिह्वा रुकी, न चाँसू रुके, हुए दूग चार,

कह रहे थे वे नेत्र वदार
“हृदय ! मैं करता तुमको प्यार।”

त्रिधारा



आशा-प्रत्याशा में यों ही बीते कितने मास,
सुना एक दिन आज हो चुका अपने अरि का नाश,
त्रिजयी हुआ स्वदेश, शंख-ध्वनि छाई चारों ओर,
चढ़ी अटा आचार-लाज ले वधुएँ हर्ष-विभोर,
नीचे दौड़ी देख द्वार अपना सैनिक सुकुमार,
किन्तु सीढ़ियों पर ही अंकित हुआ मिलन-आचार,

कहा चुम्बन कर अगणित बार
“हृदय ! मैं करता तुमको प्यार ।”



त्रिधारा

वह भीषण क्षण, निशा-गोद में होता था दिन अस्त,
भाग्य-सूर्य के दुखद अस्त पर रोता था नभ प्रस्त,
कभी तड़क उठता था अम्बर का अन्तस्तल छान्त,
करता था चीत्कार पवन चपला भी थी उद् अन्त,
अवर-पीड़ित उनका यह कहना-“गाओ आज मलार ।”
सुन मेरी कल्याणार्द्र रागिनी के कोमल उद्गार,

किसी का कहना यह प्रतिघार,
“हृदय ! मैं करता तुमको प्यार”

त्रिधारा



जीवन की संध्या-बेला में मुझको बुला समीप,
संयत, धीर. खिल स्वर में कहना-“बुझ चला प्रदीप,
भिक्षा दो, अन्तिम भिक्षा दो, फैले हैं ये हाथ,
क्षमा चाहिए प्रिये ! विवश हो छोड़ रहा हूँ साथ ।”
देख मुझे विचलित समझाने का करना उपचार,
गिरा किन्तु अपने नयनों से विवश अश्रु दो-चार,

किसी का कहना यह प्रतिवार,
“जदुय ! मैं करता तुमको प्यार” ।



त्रिधारा

थकित, व्यथित, उन्मीलित नयनों से कर कुछ संकेत,
मेरे कर में धीमे से दे अपना कृप कर श्वेत,
वठना, उठकर बैठ, भुजा भर कर मुझको आक्रोड़,
अपने कम्पित म्लान अधर मेरे अधरों पर छोड़,
रो देना, चपला में दिखना गालों पर जल-धार,
अन्धकार में फिर सुन पड़ना वही व्यथित उद्गार,

हृदय ! मैं करता तुमको प्यार,
किसी का कहना यह प्रतिभार ।

